खेलों की पहल से भी बदल सकती है तस्वीर

राजकीय उ.प्रा. विद्यालय लवाणा के खेल शिक्षक मनोज हाडा से मोहम्मद उमर की बातचीत

यह साक्षात्कार लवाणा के खेल शिक्षक मनोज हाडा सर का है। मनोज राजस्थान के उच्च प्राथमिक विद्यालय लवाणा, राजसमन्द में अध्यापक हैं। मनोज और अन्य शिक्षकों ने मिलकर पिछले सालों में स्कूल को बहुत बेहतर किया है। इसमें खेल और शिक्षा की सहभागी गतिविधियों को शामिल करते हुए बच्चों के सर्वांगीण विकास में नया प्रयास किया है। इसी पर हम उनसे बात करेंगे।

मोहम्मद उमर : आप कई वर्षों से शिक्षा और समाज के लिए जो काम कर रहे हैं उसे पूरा राजसमन्द ज़िला जानता है। आप अपने बारे में, पढ़ाई-लिखाई और स्कूली जीवन के बारे में कुछ बताएँ।

मनोज हाडा : धन्यवाद कि आपने मुझे अपनी बात रखने मौक़ा दिया है। मेरी 12वीं तक की पढ़ाई सरकारी स्कूल श्री बालकृष्ण विद्या भवन, कांकरोली, राजसमन्द से हुई है। खेलों से मेरा जुड़ाव बचपन से रहा है। फुटबॉल खेलना मुझे सबसे अच्छा लगता है। तीसरी कक्षा से ही फुटबॉल खेल रहा हूँ। विद्यालय स्तर पर अन्य खेलों में भी भाग लेने लगा था। मैंने ज़िला, राज्य और राष्ट्रीय स्तर तक फुटबॉल में भाग लिया। हमें सीनियर लोगों ने बहुत सहयोग किया। वे सुबह-शाम अभ्यास कराते थे। मैं क्लब से भी जुड़ा। फुटबॉल जुनून था, तो मैंने सोचा क्यों न आगे भी इसी से जुड़ा रहूँ या इससे जुड़ा कोई व्यवसाय करूँ।

स्कूल की पढ़ाई पूरी होने के बाद खेल के लिए ही मोहनलाल सुखाडिया यूनिवर्सिटी, उदयपुर कला महाविद्यालय कैम्पस में दाख़िला

लिया। मैंने यह सोचा था कि आगे राष्ट्रीय खेल संस्थान (एनआईएस) से जुड़ेंगे और विश्वविद्यालय के लिए खेलेंगे। मैं 4 साल तक अपनी यूनिवर्सिटी की फुटबॉल टीम का हिस्सा और कप्तान भी रहा हूँ। इसके बाद, मुझे नीविया कम्पनी (जो खेल से सम्बन्धित सामग्री का निर्माण करती है) के साथ हुए अनुबन्ध के तहत राष्ट्रीय स्तर के क्लब में शामिल होकर दो साल तक खेलने का अवसर मिला। यहाँ मैंने राष्ट्रीय स्तर पर बहुत सारे मैच खेले हैं।

जैसा कि अधिकतर खिलाड़ियों के साथ होता है, 20-21 साल का होते ही उसे आजीविका का आधार बनाने की ज़रूरत होती है। यह तय करना होता है कि भविष्य में क्या करेंगे? ज़िन्दगीभर तो खेल नहीं सकते। इससे तो ख़र्चा भी नहीं निकाल सकते। माता-पिता

और परिवार कब तक सहयोग करेंगे? एक समय आता है जब हमें या तो उस खेल के अन्दर रहकर समस्याओं से जूझना पड़ता है या सोचना पड़ता है कि ज़िन्दगी के लिए कोई व्यवसाय या आमदनी का स्रोत ढूँढ़ें।

आज सरकार के सहयोग से एक स्तर का बदलाव आ गया है। सन् 2000 के आसपास की बात है। मैंने भी सोचना शुरू किया और खेल में ही आगे बढ़ना तय किया। डीपीएस से प्रशिक्षण ले लिया। वहाँ पर भी काफ़ी समस्या आई। राष्ट्रीय स्तर के खिलाड़ी हों या फिर कोई सिर्फ़ एक बार ही खेला हो, सरकार की नियुक्तियों का आधार 10वीं और 12वीं के अंक और खेल का एक प्रमाण पत्र था। अमूमन ये देखते थे कि खिलाड़ी औसत होते थे। ठीक है, एकाध ही पढ़ाई-लिखाई में अच्छा हो सकता है। पर सभी खिलाड़ी या तो खेल के कारण कमज़ोर होंगे या फिर औसत होंगे। सरकार ने पॉलिसी न जाने क्या सोचकर बना रखी थी कि जिसके 10वीं और 12वीं में उच्चतम अंक होंगे, उसको शारीरिक शिक्षक (पीटीआई) बनाएँगे या सरकारी नौकरी देंगे। मुझे लगा इस तरह सिर्फ़ खेल के सहारे जीवन नहीं चलेगा।

परिवार की कुछ ज़रूरतें हैं, तो उसके लिए मैं व्यापार में चला गया। साथ ही खेलों से भी जुड़ा रहा। मैंने ग्रेजुएशन करके सोचा कि 10वीं और 12वीं के आधार पर ही सरकारी नौकरी के लिए प्रयास करता हूँ। 10वीं में मेरी तृतीय श्रेणी थी। श्रेणी सुधार के लिए 2001 में फिर से 10वीं उत्तीर्ण की। जब 2003 में रिक्तियाँ निकलीं तो आवेदन किया। बाद में सरकार ने कहा कि अगर ग्रेजुएशन के बाद आप 10वीं करोगे तो हम नहीं मानेंगे। मेरा मानना था कि इस पद के लिए आवेदन हेतु जो उम्र रखी गई थी, मैं उससे कम हूँ और जो मानदण्ड रखे गए थे, उन सबमें भी मैं योग्य हूँ।

मैं मेरिट में था। फिर भी सरकार ने मना कर दिया। इस तरह के नियमों के ख़िलाफ़ मैं उच्च न्यायालय और फिर उच्चतम न्यायालय भी गया। सन् 2013 में उच्चतम न्यायालय से मेरे पक्ष में फ़ैसला आया। कई संघर्षों से गुज़रकर मैं सरकारी स्कूल में खेल शिक्षक की नियुक्ति प्राप्त कर सका।

मैंने शारीरिक प्रशिक्षण प्रशिक्षक की नौकरी के लिए आवेदन किया था। शुरू से ही मेरी इच्छा थी कि मैं खेल से जुड़ा रहा हूँ तो खिलाड़ी तैयार करूँ। मैं सोचता था कि बच्चों को एक वातावरण मिलना चाहिए, खिलाड़ियों को सुविधाएँ मिलनी चाहिए। भारत में क्रिकेट को छोड़कर सभी खेलों को एक तरह से बिलकुल ही निम्न तरीक़े से देखा जाता था। खिलाड़ियों की कोई अहमियत नहीं थी। कहा जाता था कि खेलोगे कूदोगे तो बनोगे ख़राब। ऐसी स्थिति थी। यह सब मेरे दिमाग़ में था कि इन सबको खेलों के साथ जोड़कर इसको ऊपर की तरफ़ ले जाया जाए, बच्चों को तैयार किया जाए। उसकी अहमियत सबको बताई जाए। तो इन सबके कारण मैं खेलों से जुड़ा रहा और खेलता रहा।

मोहम्मद उमर : लवाणा स्कूल में आप किस सत्र में आए और उस समय की स्थितियों को देखकर किस तरह के विचार आए?

मनोज हाडा : 2014 में मुझे लवाणा विद्यालय में खेल शिक्षक के रूप में नौकरी मिली। जब मैं उस विद्यालय में पहुँचा तो देखा कि वहाँ कोई खेल मैदान ही नहीं है। जो आधारभूत सुविधाएँ होती हैं, जैसे– पीने का पानी, बैठने के लिए स्वच्छ और साफ़-सुथरी कक्षा होनी चाहिए, साफ़-सुथरे शौचालय होने चाहिए, तो मैंने सोचा कि क्या इसी के लिए मैंने इतनी लड़ाई की। क्यों मैं 2001 से लेकर 2013 तक सोचता रहा कि मैं खेल से जुड़ूँगा, शारीरिक शिक्षक बनूँगा, खिलाड़ी तैयार करूँगा। खेलना तो दूर, उनकी ख़ुद की व्यक्तिगत ज़रूरतें ही पूरी नहीं हो पा रही थीं। फिर भी मैंने वहाँ पदभार ग्रहण किया और कुछ दिन माहौल देखा। साथी शिक्षकों का यही विचार होता है कि पीटीआई की क्या ज़रूरत है। इस तरह से बच्चों के साथ सम्बन्ध मत बनाओ, बच्चों से ऐसे प्यार से बात करने की ज़रूरत नहीं है। बच्चे सिर चढ़ जाएँगे, आप तो आते-जाते उन्हें दो लगाया करो। एक-दो माह तक तो ये चलता रहा, फिर दिमाग़ में आया क्या मैं इसीलिए नौकरी कर रहा हूँ। या तो इसे छोड़कर अकादमी शुरू कर दूँ, या व्यवसाय की तरफ़ चलूँ। मेरा मक़सद था, खेल से जुड़ना, खिलाड़ी तैयार करना, वैसा माहौल प्रदान करना परन्तु खेल मैदान और संसाधन कुछ भी नहीं। शुरुआत में होता है कि विद्यालय स्टाफ़ से भी आपको सकारात्मक प्रतिक्रिया नहीं मिल पाती है। ये भी सोच होती है कि ये बच्चों को खिलाएँगे, कहीं इनको चोट लग गई, हाथ-पाँव टूट गया तो इनके माता-पिता हमारे पास आ जाएँगे और कल कहीं टूर्नामेंट में ले जाएँगे और कुछ हादसा हो गया तो क्या होगा? शुरुआत में तो खेल खिलाने की अनुमति भी नहीं थी। आप तो बस इनको कक्षा में लेकर बैठे रहो। अनुशासन में रहना आना चाहिए। कुछ समय बाद मैंने सोचा कि शुरुआत करते हैं। वहाँ मैंने टूर्नामेंट का आयोजन कराया। खेल मैदान के नाम पर पीछे दो-तीन बीघा ज़मीन दे रखी थी, मगर उसपर गाँव के कुछ लोगों का क़ब्ज़ा था। वहाँ कई लोहे की रॉड और लकड़ियाँ भी पड़ी हुई थीं। फिर गाँव वालों के साथ समझाइश करके वहाँ से यह सब हटवाया। उनके सहयोग से वहाँ एक छोटा खेल मैदान शुरू किया। बच्चों को हम सुबह-शाम नियमित बुलाने लगे। तो एक शुरुआत करनी पड़ती है। आपको कोई सहयोग नहीं करेगा, न स्टाफ़ करेगा, न गाँव वाले। गाँव वाले भी विरोध में थे कि बच्चों को खिलाने की ज़रूरत नहीं है। शुरू में कई समस्याएँ आती हैं। अगर हमारी नीयत सही है तो लोग विश्वास करने लगते हैं और सफलता ज़रूर मिलती है।

मोहम्मद उमर : बच्चों के खेलने लायक़ मैदान लोगों के क़ब्ज़े में था और प्रधानाध्यापक और साथी शिक्षक भी कुछ करने को तैयार नहीं थे तब आपने क्या-क्या प्रयास किए कि धीरे-धीरे लोग आपके साथ आएँ?

मनोज हाडा : सभी जगह कुछ अच्छे लोग होते हैं। आज के युवा बहुत जागरूक हैं। मैंने उन्हें बताया कि किस तरह से खेल-कूद का माहौल बनाना चाहते हैं। अगर स्कूल को आवण्टित मैदान से लोगों का क़ब्ज़ा ख़ाली हो जाए, तो कबड्डी, फुटबॉल का मैदान बन सकता है। बच्चों के लिए टूर्नामेंट का आयोजन किया जा सकेगा। तहसीलदार को भी अपनी योजना बताई और उनके सहयोग से जगह की नपती की गई। गाँव वालों की एक मीटिंग बुलाकर उनको भी योजना बताई। गाँव वालों ने पंच-सरपंच के साथ मिलकर, मैदान पर जिनके क़ब्ज़े थे उनको क़ब्ज़ा ख़ाली करने की समय-सीमा दी। धीरे-धीरे सब क़ब्ज़ाधारी अपना सामान और जानवर हटाने लगे। खेल मैदान ख़ाली हो गया। फिर सीमांकन हुआ, सबकी सहमति से खेल मैदान बनाकर यहाँ चारदीवारी का निर्माण किया गया।

मोहम्मद उमर : गाँव में टूर्नामेंट के आयोजन ने बच्चों, अभिभावकों और साथी शिक्षकों पर क्या असर डाला?

मनोज हाडा : मैंने पदभार ग्रहण करने के एक-दो महीने में ही टूर्नामेंट कराया था। शुरुआत में बच्चों को ये भी मालूम नहीं था कि फुटबॉल पैर से खेला जाता है, इसके नियम जानना तो

बहुत दूर की बात है। फुटबॉल में हाथ लगाया जाता है या नहीं? कैसे हार-जीत होती है? मैच देखने से उनको काफ़ी कुछ सीखने को मिलता है। हर बच्चा चाहता है कि वो खेले। शुरुआत में खेलों के माध्यम से ही उनको पढ़ाई कराएँ। बच्चों के लिए यह ज़्यादा आसान रहता है। मैंने भी बच्चों के साथ यही सब शुरू किया, इससे गाँव के लोगों की काफ़ी सकारात्मक प्रतिक्रिया आई। फिर धीरे-धीरे नियमित रूप से अभ्यास शुरू हो गया। टूर्नामेंट के आयोजन ने बच्चों में रुचि जगाने और समुदाय से सहयोग प्राप्त करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। इस पहले टूर्नामेंट के बाद से ही बदलाव की असली कहानी की शुरुआत हुई। अब तो विद्यालय के बच्चे फुटबॉल और वॉलीबॉल नियमित रूप से खेलते हैं।

मोहम्मद उमर : आपने जो काम तय किए उनमें कुछ प्राथमिकताएँ तय कीं या जैसा सामने आता गया वैसा आप करते गए।

मनोज हाडा : पदभार ग्रहण करने के बाद खेलों की शुरुआत की। सुबह-शाम अभ्यास शुरू कराया। पर जब विद्यालय जाते थे तो वहाँ देखता था कि सभी जगह सरकारी स्कूलों की जो स्थिति होती है, वो वहाँ पर भी थी। न तो वहाँ कोई साफ़-सफ़ाई होती थी, न पेयजल होता था, और न शौचालय थे। विद्यालय में अनुसूचित जाति-जनजाति समुदाय के बच्चे ज़्यादा थे। सामान्य वर्ग से एक भी बच्चा नहीं था। बच्चे ख़ुद भी तैयार होकर नहीं आते थे। मुझे लगा कि इस स्थिति में कुछ बदलाव करना चाहिए। विद्यालय में स्टाफ़ से बात की, प्रधानाध्यापक से चर्चा की। हमें बच्चों की आधारभूत ज़रूरतें सबसे पहले पूरी करनी चाहिए। विद्यालय परिसर को स्वच्छ रखना पड़ेगा। भले ही विद्यालय भवन पुराना हो, मगर इसे साफ़-सुथरा तो रख ही सकते हैं। पीने के पानी के लिए अच्छे नल की व्यवस्था करा सकते हैं। टंकी व शौचालय की सफ़ाई करवा सकते हैं। जन सहयोग से विद्यालय में काम करवाया गया। शुरुआत रंग-रोगन से की गई, फिर जैसे-जैसे समस्याएँ सामने आती गईं, उनके आधार पर काम करते गए। पीने के पानी वाली टंकी की साफ़-सफ़ाई करवाई, और छात्रों व छात्राओं के लिए अलग-अलग शौचालय का निर्माण किया गया। कक्षा-कक्ष की आवश्यकता थी, जन सहयोग से, प्रशासन से, सरकार से, जहाँ से भी सहयोग मिल सकता था, हमने माँग की। खेल मैदान में जो ज़रूरी सुविधाएँ होती हैं, उनके किट, खेल उपकरण सब उपलब्ध करवाए। खेलों से बड़ा फ़ायदा यह होता है कि हम बच्चों को बाहर भी ले जा सकते हैं। जब वो दूसरे सरकारी व प्राइवेट स्कूलों के साथ खेलते हैं तो उनको बहुत कुछ सीखने को मिलता है। मैं अपने विद्यालय के बच्चों को जे के स्कूल, लक्ष्मीपत सिंघानिया आदि बड़े स्कूलों के साथ मैच खेलने के लिए टूर्नामेंट में ले जाता था। वहाँ वो देखकर सीखते थे। धीरे-धीरे उनमें आपस में दोस्ती भी होने लगी। वो बच्चे भी यहाँ खेलने आने लगे। सबकी सोच में, रहन-सहन में बदलाव आने लगा। एक दूसरे को देखकर विद्यालय स्तर पर परिवर्तन होने लगा। धीरे-धीरे आज ऐसा समय आ गया है कि सभी पूरी साफ़-सफ़ाई और तैयारी के साथ स्कूल आने लगे हैं। उनको लगता है कि हमें विद्यालय इस तरह से तैयार होकर और किताब, बस्ते ध्यान से लेकर जाना चाहिए। पहले यहाँ-वहाँ कचरा पड़ा रहता था, अब अगर कहीं पर कचरा दिखता है तो ख़ुद ही हटाकर दूसरी तरफ़ डाल देते हैं।

जे के स्कूल अच्छे निजी स्कूलों में गिना जाता है और लवाणा का स्कूल सरकारी है। इन स्कूलों के बच्चे खेल के माध्यम से एक मंच पर आए और इन्होंने एक दूसरे से सीखा कि हमारा स्कूल भी इस साफ़-सुथरे दिख रहे स्कूल जैसा रहे। जब ज़िला स्तरीय टूर्नामेंट हुआ, सारे ज़िले से फुटबॉल टीम आईं। एक नामी प्राइवेट स्कूल की टीम ज़िले में हमेशा चैम्पियन रहती थी, क्योंकि वहाँ संसाधनों की कमी नहीं होती थी और वहाँ पर लगभग 1500-2000 बच्चे हैं। हमारे विद्यालय में 150 बच्चे ही थे। हमारे बच्चों ने कड़ी मेहनत की और ज़िले के चैम्पियन हुए। जब प्राइवेट स्कूल वालों ने देखा कि ये भी जीत सकते हैं, एक स्वस्थ प्रतिस्पर्धा का माहौल

बना। बच्चों के मन में भी एक दूसरे के प्रति बराबरी और सम्मान की भावना आई। उनमें आपस में मित्रता होने लगी। इस तरह से सकारात्मक प्रतिक्रिया दोनों तरफ़ से होने लगी और बच्चे आपस में एक दूसरे से बात भी करने लगे।

मोहम्मद उमर : ऐसी कुछ घटनाएँ बताएँ जो आपको उत्साहित करती हैं।

मनोज हाडा : हाँ, शुरुआत में कोई भी काम आसान नहीं होता है। किसी भी क्षेत्र में समस्याएँ तो आएँगी ही। लोग सोचते हैं कि मैं अच्छा कर रहा हूँ, फिर भी लोग मेरा सहयोग नहीं कर रहे हैं, मेरे बारे में बुरा सोच रहे हैं। छोड़ो, रहने दो, मुझे क्या करना है। ये विचार मेरे मन में भी आया था, मगर मैं अपने काम में लगा रहा था। किसी काम में लगातार प्रयास करो तो धीरे-धीरे सकारात्मक प्रतिक्रिया मिलनी शुरू हो जाती है। आज विद्यालय के शिक्षकों का पूरी तरह से सहयोग है। हमने सोचा विद्यालय में पेड़-पौधे लगने चाहिए। सभी शिक्षक-शिक्षिका भी सहमत थे। 15,000 का बजट था। सभी ने कुछ-कुछ योगदान किया। स्कूल के मैदान में पौधे लगाए। आज विद्यालय में अच्छा हरा-भरा बग़ीचा तैयार है।

मोहम्मद उमर : अब आप लोग कितने शिक्षक-शिक्षिकाएँ हो गए हैं स्कूल में?

मनोज हाडा : पहले 5 ही शिक्षक-शिक्षिकाएँ थे। अब बच्चों की संख्या के आधार पर 11 हैं। पहले 150 बच्चे थे, आज 232 हैं। बच्चों को जब किसी भी चीज़ की ज़रूरत लगी, जैसे कक्षा में पंखे या कूलर नहीं थे, तो शिक्षकों-शिक्षिकाओं ने शुरुआत की। एक-एक पंखा हमारी तरफ़ से दिया। शुरुआत हमने की तो गाँव वालों ने भी देखा कि स्कूल में वे भी कोई सामान देंगे तो बच्चों के ही काम आएगा। अब भी ज़रूरत होती है तो गाँव वाले और स्टाफ़ भी पूरा सहयोग करते हैं।

मोहम्मद उमर : ऐसी कोई घटना जिससे लगे कि अब लोगों का आपके प्रति व्यवहार में सकारात्मक परिवर्तन आया है।

मनोज हाडा : हाँ, जब हम कोई शुरुआत करते हैं और उसमें सफल हो जाते हैं, तो सबके नज़रिए में भी बदलाव होता है। जब हम कोई उदाहरण रखते हैं तो उसे देखकर अधिकारी और दूसरे साथी शिक्षक भी चाहते हैं और दूसरे विद्यालय में भी प्रयास शुरू होते हैं। कुछ भी करने के लिए सोच के साथ कड़ी मेहनत से धीरे-धीरे एक विचार बनता है और समुदाय में फैलता है।

मोहम्मद उमर : आपने बताया कि लड़कियों की भागीदारी को लेकर भी गाँवों में बहुत हिचक है। ऐसे लोग हैं जो बालिकाओं को स्कूल ही नहीं भेजना चाहते हैं। जब इन्होंने अपने बच्चों व बेटियों को बेहतर खेलते देखा तो क्या कुछ बदला? यहाँ तक की यात्रा में आई चुनौतियों के बारे में बताएँ?

मनोज हाडा : शुरुआत में हमारे विद्यालय में 100 लड़कियाँ और 50 लड़के थे। थोड़े-बहुत सक्षम भी अपने लड़कों को तो प्राइवेट स्कूल भेजते थे, लेकिन लड़कियों को सरकारी स्कूल में पढ़ाते थे। अतः लड़कियों की संख्या लड़कों से बहुत अधिक थी।

खेल की शुरुआत में सब पूर्वाग्रह से ग्रसित थे। कई मानते थे कि बच्चा वैसे भी पूरे दिन घूमता रहता है। घूमना-फिरना ये सब खेल ही तो है। बच्चा अगर कुछ नहीं कर रहा है, तो वो खेल रहा है। यह भी शक था कि बच्चा खेलने से पतला हो जाएगा। कुछ माता-पिता ने तो यह शिकायत की भी कि बच्चे का वज़न कम हो गया है। उसको दौड़ाना नहीं है, खड़े-खड़े ही खेल खिलाइए। हम अपने काम में लगे रहे। बच्चे स्कूल में खेलते, अभ्यास करते, शिक्षक भी उनकी मदद

करते। विद्यालय के बच्चे जब ज़िला स्तर पर खेले तो उनके नाम, फ़ोटो और माता-पिता के नाम भी अख़बारों में आए। अब दूसरे गाँव या स्कूल वाले भी बच्चों को पहचानने लग गए। उनके माता-पिता को भी सम्मान और पहचान मिलने लगी। शिक्षक और गाँव के लोग भी प्रशंसा करने लगे कि आपका बच्चा अच्छा कर रहा है। धीरे-धीरे उन्हें भी खेल-कूद की अहमियत पता चलने लगी। आज माता-पिता ख़ुद ही अपने बच्चों को खेलने के लिए भेज देते हैं।

लड़कियों के मामले में तो हर जगह काफ़ी प्रतिबन्ध हैं। विद्यालय, समाज, हर जगह लड़कियों का मानसिक, शारीरिक व भावनात्मक रूप से काफ़ी शोषण होता है। लड़कियाँ खुलकर इसे कह भी नहीं पाती हैं। इसलिए स्टाफ़ ने मिलकर बच्चों को भी काफ़ी जागरूक किया। उन्हें बताया कि किसी भी तरह का शोषण हो तो उसका पुरज़ोर विरोध करना चाहिए। अपने माता-पिता या परिवार में किसी भी बड़े को खुलकर अपने मन की बात बता सकती हो। शुरुआत में लड़कियों को अलग समूह में खेलने का अवसर दिया गया। जब लड़कियाँ बेहतर खेलने लगीं तो उनकी भागीदारी भी स्कूल, ज़िला और राज्य स्तर के खेलों में होने लगी। उनके माता-पिता भी सकारात्मक सोचने लगे। इस तरह के प्रयासों से माँ-बाप का भरोसा क़ायम करने में समय लगता है।

मोहम्मद उमर : आपके विद्यालय की लड़कियाँ कौन-कौन से खेलों में भागीदारी करती हैं?

मनोज हाडा : विद्यालय में बालिकाओं के लिए वॉलीबॉल खेल चल रहा है। 7-8 बच्चियाँ वॉलीबॉल खेल रही हैं, एक बच्ची राष्ट्रीय स्तर पर बैडमिंटन खेली है, विद्यालय में बैडमिंटन कोर्ट का भी निर्माण किया गया है। एथलेटिक्स में भी बच्चे काफ़ी रुचि रखते हैं और नियमित अभ्यास करते हैं। ज़िला और राज्य स्तर पर भी बच्चों ने प्रतिनिधित्व किया है। मुख्य रूप से लड़कों के लिए फुटबॉल और लड़कियों के लिए वॉलीबॉल एवं बैडमिंटन हैं।

मोहम्मद उमर : आपके विद्यालय में फुटबॉल और बास्केटबॉल जैसे खेलों की सुविधा उपलब्ध है। यहाँ बच्चे सुबह अभ्यास करते हैं। सबको तैयार करने में काफ़ी संसाधनों की आवश्यकता पड़ी होगी।

मनोज हाडा : भारत के स्कूलों में खेल मैदानों की जो दयनीय स्थिति है, सभी उससे अवगत हैं। जब मैं खेलता था, अपने स्कूल के बच्चों को सभी तरह के खेल संसाधन व आधारभूत

सुविधाएँ उपलब्ध कराने के बारे में सोचता था। शुरुआत में बच्चों के साथ मिलकर घास का खेल मैदान तैयार किया। जो भी संसाधन चाहिए थे उन्हें ख़रीदने के लिए गाँवों के लोगों, साथी शिक्षकों आदि से सहयोग लिया। कई बार अपने वेतन से ही कुछ ख़र्च कर बच्चों के लिए खेलने का सामान ख़रीदा। उन्हें आसपास के टूर्नामेंट में ले जाने का ख़र्च स्वयं उठाया। आज हम जन सहयोग से कई काम करा पाते हैं। स्कूल में पानी की पाइपलाइन है, फ़व्वारा है और मोटर है। फुटबॉल खेलने के लिए एक अच्छा घास का मैदान है। वॉलीबॉल कोर्ट और बैडमिंटन कोर्ट भी हैं। जिस खेल में जिन-जिन चीज़ों की ज़रूरत है, और जो भी होनी चाहिए वह सब उपलब्ध कराने का प्रयास करते हैं। साथ ही बच्चे को आहार भी उसी के अनुरूप मिलना चाहिए, तभी वह आगे बढ़ पाएगा।

मोहम्मद उमर : स्कूल के खेल के मद में संसाधनों या आयोजन के लिए जो बजट होता है, क्या उसमें यह सम्भव है? इसके लिए आपको क्या अतिरिक्त प्रयास करने पड़े? यदि अन्य स्कूल ऐसा कुछ करना चाहें तो उनके लिए आपके क्या सुझाव होंगे?

मनोज हाडा : शारीरिक शिक्षक, प्रधानाध्यापक या कोई शिक्षक अपने विद्यालय या गाँव में यदि कुछ करना चाहता है, तो सबसे पहले तो विज़न होना चाहिए कि वो क्या करना चाह रहा है। जब वह इसकी रूपरेखा बना लेंगे या सोचेंगे कि इस तरह से मुझे काम करना है तो वह काम होना ही होना है। हाँ, उसके लिए संसाधन जुटाने हैं परन्तु वह भी धीरे-धीरे हो जाता है। जैसे-जैसे अपने लक्ष्य की ओर क़दम बढ़ाते रहोगे तो जन सहयोग से, विद्यालय स्तर पर, गाँव से, प्रशासन से सहयोग मिलता है। खेलने के लिए सिर्फ़ कोर्ट ही नहीं बनाना होता है, उसका रखरखाव भी करना होता है। सिर्फ़ विद्यालय के बजट से यह सब काम नहीं हो सकता। अभी दो-तीन साल पहले तक सरकार से लगभग 12,000 रुपए आते थे, मगर अभी बच्चों के हिसाब से यह राशि बढ़ा दी गई है। खेल मैदान का सारा काम उस बजट से सम्भव नहीं है। हम मेहनत करें, पीछे पड़ें तो लोग मदद के लिए तैयार हो जाते हैं। काम के लिए सरकार के पास भी कई योजनाएँ हैं।

मोहम्मद उमर : क्या शिक्षकों में बदलाव से जुड़ी कुछ घटनाएँ भी इस पूरी प्रक्रिया में आपने देखी हैं?

मनोज हाडा : हाँ, यह तो हुआ ही है। जब आप कुछ सकारात्मक सोचते हैं, अच्छा करना चाहते हैं तो बदलाव होता है और दिखने लगता है। जब एक उदाहरण प्रस्तुत हो जाता है कि इस तरह से काम करना चाहिए, सभी अपने काम के प्रति ईमानदार हो जाते हैं और अपने काम में लगन से कुछ अच्छा करना चाहते हैं। मैं दूसरे विद्यालय में देखता हूँ कि छुट्टी होते ही अध्यापक चले जाते हैं, कभी-कभी विद्यालय नहीं आना चाहते हैं। मगर हमारे विद्यालय में आज ऐसा नहीं है। छुट्टी होती है तब भी अध्यापक स्वतः आगे आते हैं। अगर कोर्स बचा रह गया है तो अतिरिक्त कक्षा भी लेते हैं। सुबह दस बजे से अपराह्न चार बजे तक विद्यालय का समय है। सिर्फ़ इसी समय में जुड़े रहने का कोई मतलब नहीं है। हमारे विद्यालय में शिक्षक पूरी तरह से जुड़ रहे हैं। बच्चों के माता-पिता और परिवार तक से इस तरह जुड़ जाते हैं कि बच्चों के भविष्य और उन्हें आगे क्या करना चाहिए आदि से सम्बन्धित सलाह भी देते हैं। भावनात्मक तौर पर भी बच्चों के साथ सम्बन्ध बनने शुरू हो जाते हैं।

मोहम्मद उमर : मुझे याद आ रहा है, कोरोना काल के दौरान हम आपके विद्यालय में मिले थे। शिक्षकों ने हमें बताया था कि वो गाँव में घूम-घूमकर कुछ वर्कशीट बच्चों को देकर आते हैं। बच्चे इसे पूरा करके अगले दिन दिखाते हैं। कोरोना काल आप लोगों और बच्चों के लिए भी बहुत ही विचित्र बीता होगा।

मनोज हाडा : सही है। उस समय सरकार के प्रतिबन्ध के कारण शिक्षक चाहते हुए भी बच्चों

को नहीं पढ़ा पाए, सीधे उनके साथ जुड़ नहीं पाए फिर भी अपने स्तर पर सोशल मीडिया, वॉट्सएप आदि द्वारा बच्चों से जुड़े रहे। पाँचवीं या आठवीं कक्षा का बच्चा अगर नियमित नहीं पढ़ेगा उनका परीक्षा परिणाम ख़राब आएगा। अगर छह महीने बाद भी बच्चा आता है, तो उसको पढ़ाने की ज़िम्मेदारी तो हमारी ही है। अगर हम बिना परीक्षा के उसे प्रमोट कर देते हैं, जैसे– पहली का बच्चा दूसरी में, दूसरी का बच्चा तीसरी में, सातवीं का बच्चा आठवीं में, मगर जब उस बच्चे को अगले वर्ष कुछ नहीं आएगा तब भी तो हमें ही पढ़ाना है, तो अभी से क्यों न मेहनत करें।

मोहम्मद उमर : लवाणा स्कूल में जो बदलाव की कहानी है, उसके बारे मे और जानना चाहेंगे। आपके आने से लेकर अब तक इसमें कुल कितने साल लग गए हैं? क्या आपके इस स्कूल में आने से पहले इस दिशा में कुछ भी काम नहीं हो रहा था या यह बहुत धीमा था?

मनोज हाडा : यह मैं कैसे कह सकता हूँ कि पहले क्या था। मगर जब मैंने विद्यालय में पदभार ग्रहण किया था तब सभी लोग समय पर आते और समय पर चले जाते थे। सभी अपना काम करते थे। कुछ अतिरिक्त गतिविधियाँ नहीं होती थीं। सभी का मत था कि अतिरिक्त गतिविधियाँ नहीं करनी हैं। ऐसा करके हम अधिकारियों की नज़र में आ जाएँगे। मेरा भी पहले यही विचार था, मगर अब ऐसा नहीं है। आज विद्यालय की एक बहुत ही सक्रिय स्कूल प्रबन्धन समिति है, उसके पास भी अधिकार हैं, विद्यालय में कोई कमी है तो वो भी प्रश्न करती है, बात को ऊपर उठाते हैं। जब सब मिलेंगे, बात करेंगे, तभी तो समस्याओं का हल सोचा जा सकेगा। मेरे लिए तो यही सबसे बड़ा बदलाव है। पहले तो यही नज़रिया था कि कुछ नहीं करना, टूर्नामेंट या पिकनिक पर नहीं ले जाना है। अगर कोई हादसा हो गया तो अपने ऊपर ही आएगा। कभी कुछ अच्छा काम करते हुए कोई ग़लती भी हो सकती है। घोड़े पर से गिरने के डर से ऐसा सोचना तो ठीक नहीं होगा कि हम घोड़े पर बैठें ही नहीं।

मोहम्मद उमर : अगर इस स्कूल में आसपास के बच्चे आ रहे हैं, ज़रूर अभिभावकों को यह सन्देश गया है कि यहाँ कुछ नया और बेहतर काम हो रहा है। तो क्या अपने स्कूल में सुधार के साथ ही समाज में भी सुधार लाया जा सकता है?

मनोज हाडा : निश्चित रूप से इस तरह के कई परिवर्तन होते हुए अब हम लोग देख पा रहे हैं। हमारे विद्यालय स्तर पर धीरे-धीरे बदलाव के साथ ही समाज के स्तर पर भी बदलाव हुआ। अगड़ी जातियों के बच्चे भी अब अन्य बच्चों को स्वीकार करने लगे हैं, उनके पास बैठने लगे हैं, साथ ही खाना भी खाने लगे हैं। जन्मदिन या त्योहार आदि में एक दूसरे के यहाँ जाते हैं। इस तरह एक दूसरे के प्रति उनकी सोच में भी बदलाव हो रहा है। लड़के-लड़कियों के विचार में भी बदलाव दिखता है। वे एक साथ खेलते हैं। मैदान पर अभ्यास करते समय एक साथ दौड़ते हैं। हमारे विद्यालय में अनुसूचित जाति-जनजाति समाज के बच्चे भी पढ़ते हैं, वो खेल-कूद में बहुत आगे हैं। इनमें से कई बच्चे राष्ट्रीय स्तर पर भी खेल चुके हैं।

मोहम्मद उमर : आपके स्कूल में एक लड़की से मैं मिला था जिसने दौड़ में कई पुरस्कार जीते हैं। वह अपनी उम्र के लड़कों को पीछे छोड़ देती है। एक और बालिका से मैं मिला था, जो भील समुदाय से थी। उसने कई खेलों में भागीदारी की है। बच्चे किसी भी तरह की जाति या समाज से हों, एक टीम की तरह ही बराबरी से रहते हैं। इस तरह उनके घरों और समुदाय में अच्छा सन्देश जाता है। बड़े-बुज़ुर्गों ने ये दूरियाँ बनाकर रखीं, मगर क्या इन बच्चों के जीवन या उनके मन से ऐसे फ़र्क मिट या कम हो गए होंगे?

मनोज हाडा : हिन्दुस्तान में प्रतिभा की कमी नहीं है सिर्फ़ उसको पहचान करके, माहौल देकर आगे बढ़ाने की ज़रूरत है। दोनों तरफ़ से बेड़ियाँ टूट रही हैं।

मोहम्मद उमर : गाँव में भोज वग़ैरह होता है। लोग स्कूल से भी बच्चों को खाना खिलाने के लिए बुलाते हैं। कई बार वे कह देते हैं कि सिर्फ़ इसी समाज के बच्चों को भेजना। क्या आपके यहाँ भी इस तरह से बुलावा आता है या लोग अपेक्षा करते हैं कि उनके समाज के ही बच्चे आएँ?

मनोज हाडा : नहीं। जैसा कि मैंने बताया, विद्यालय स्तर पर भी और बाहर भी तक़रीबन सभी ने स्वीकार कर लिया है। बच्चे एक साथ बैठकर ही खाना खाते हैं। एक दूसरे के घर जा रहे हैं और एक दूसरे के साथ बैठकर खेल भी रहे हैं। तो सबकुछ स्वीकृत हो चुका है। हाँ, यह तो है कि यदि कोई बच्चा, भले ही वह सवर्ण जाति से क्यों न हो, वह साफ़-सुथरा नहीं है, तो बच्चे स्वतः ही उससे दूरी बनाएँगे।

मोहम्मद उमर : आपके विद्यालय में मैंने देखा है, शिक्षकों ने बहुत सारे टीएलएम बना रखे हैं। मिट्टी के खिलौने हैं, जो बच्चों के साथ मिलकर बनाए गए हैं, पेंटिंग्स हैं, मॉडल्स हैं, ये सारी चीज़ें देखकर लगता है कि एक तरह का उत्साह और ऊर्जा का संचार शिक्षकों के समूह में हुआ है। वे भी अपने काम में एक नयापन लाने का प्रयास लगातार कर रहे हैं। आपने बातचीत में बताया कि खेल-कूद इस पूरे परिवर्तन की धुरी बनकर उभरा है। यदि मान लें कि आप किसी और विषय के शिक्षक बनकर आ गए होते तो भी क्या ऐसा ही होता? खेलों को आप ख़ुद के बदलने में या इस पूरे बदलाव में मुख्य रूप से देख पा रहे हैं?

मनोज हाडा : मैं खेल टीचर था। शुरू से खेला और घर से बाहर निकलकर शहर, समाज, देश को देखने का मौक़ा मिला। कहीं-न-कहीं इन सभी अनुभवों का फ़ायदा तो मिलता है। विद्यालय में सारी सहशैक्षिक गतिविधियाँ होनी चाहिए। बच्चा आगे बढ़कर रुचि लेगा कि मेरी तो आज चित्रकारी की प्रतियोगिता है। आज मैं मॉडल बनाऊँगा या आज मैं मिट्टी का कुछ बनाऊँगा। आज व्यंजन बनाने की कक्षा है या आज हमारे यहाँ बाल मेला है। आज खेल है या प्रश्नोत्तरी है। तो इस तरह की शैक्षिक गतिविधियों में बच्चे बहुत रुचि लेते हैं। इस तरह की शैक्षिक गतिविधियाँ जितनी अधिक होंगी, हम उतना ही बच्चों से जुड़ पाते हैं और उन बच्चों को उतना ही मज़ा आता है।

इन शैक्षिक गतिविधियों से हम बच्चों को समझा भी सकते हैं, पढ़ा भी सकते हैं और बच्चों से जुड़ भी सकते हैं। मैं यही सोचता हूँ कि अगर मैं शारीरिक शिक्षक नहीं होता तो भी क्या मेरा नज़रिया यही रहता? मैं यही सोचता था कि मैं विद्यालय क्यों जाना चाहता था। मुझे विद्यालय में क्या अच्छा लगता था? कोई ग़लत करे तो कैसे विरोध होना चाहिए? मैं पढ़ाई क्यों करना चाहता था? बच्चों के विचार ऐसे ही होते हैं। अगर किसी की याददाश्त अच्छी है, उसने दस प्रश्न पढ़कर याद कर लिए और कोई बीस बार भी पढ़ रहा है फिर भी याद नहीं हो रहा है। इसका मतलब ये नहीं कि दूसरा बच्चा कमज़ोर है। एक शिक्षक के रूप में हमें सभी पक्ष देखने-समझने की ज़रूरत पड़ती है। हमें बच्चे के स्तर पर जाकर सोचना पड़ेगा, तब हम बच्चों से जुड़ पाएँगे। जब उस बच्चे की जगह ख़ुद को रखकर सोचेंगे कि ये स्कूल क्यों नहीं आ पा रहा है? या क्यों नहीं पढ़ पा रहा है, क्यों भाग रहा है? तब ही समझ सकेंगे। हमारे विद्यालय में एक समस्या ये भी है, कई बच्चे दूसरे विद्यालय से आए हैं। उन्हें छठवीं कक्षा में होने के बावजूद भी किताबें पढ़नी नहीं आती हैं। उन्हें छठवीं कक्षा के प्रश्नोत्तर दिए जाएँगे, या सवाल हल करने दिए जाएँगे तो जब वे पढ़ ही नहीं पा रहे हैं तो हल कैसे करेंगे? तब यही बच्चे विद्यालय से भागेंगे। ये भी नहीं हो सकता है कि अब इस उम्र में शिक्षक उनको सुबह से बिठाकर अलग से अक्षर ज्ञान शुरू करवाए। उनको फिर से विद्यालय में लाने, समझाने, अलग से कक्षा लेने में बहुत समस्या आती है। पर जब हम उस बच्चे की जगह ख़ुद को रखकर सोचेंगे कि क्या कर सकते हैं? कैसे कर सकते हैं? तो धीरे-धीरे उन समस्याओं पर क़ाबू पा सकते हैं या निराकरण कर सकते हैं।

मोहम्मद उमर : ये आपने बिलकुल सही कहा। सभी बच्चे विविध रुचि के होते हैं। हम सबसे एक जैसी अपेक्षा करें और सबसे एक जैसा प्रदर्शन चाहें वो ठीक नहीं है। मैंने एक कहानी पढ़ी थी जिसमें चील, मेंढक, मछली व ख़रगोश हैं। ख़रगोश दौड़ सकता है, चील उड़ सकती है, मेंढक और मछली पानी में तैर सकते हैं। हम अगर इनसे कहें कि सभी उड़ो। ये इन सबके साथ नाइंसाफ़ी है। बच्चों के साथ भी यही है, हर बच्चे की रुचियाँ और विविधताएँ अलग-अलग हैं। अगर हम खेल की गतिविधियों से आधार बनाते हैं, तो खेल से बहुत सारी चीज़ें शिक्षा से जुड़ती हैं। ख़ासतौर से मूल्यों की बात है। खेल ईमानदारी और एक स्वस्थ प्रतिस्पर्धा की भावना जगाता है। यह आज के समाज में बहुत महत्त्वपूर्ण है। हो सकता है कि लोग पढ़-लिखकर इंजीनियर बन जाएँ, लेकिन वो इसी दुख में रहते हैं कि मेरा साथी मुझसे आगे कैसे निकल गया है। जबकि यहाँ आपने उदाहरण दिया कि लक्ष्मीपत सिंघानिया स्कूल के बच्चे खेल में हार गए थे फिर भी वे दोस्ती का हाथ बढ़ाकर लवाणा स्कूल के बच्चों के दोस्त बन गए।

मनोज हाडा : आपने सही कहा। सिर्फ़ किसी खेल का खिलाड़ी बनाकर हमें कोई राष्ट्रीय स्तर का पदक नहीं चाहिए। हमें उसको खेल के सहारे एक अच्छा नागरिक भी बनाना है। यह हमारे पाठ्यक्रम में भी दिया गया है। निश्चित रूप से, सरकार को भी अपने सिस्टम में यह लाना चाहिए। किसी बच्चे को दिन-रात पढ़ाकर कलेक्टर बनाया जा सकता है। मगर कल को वह भ्रष्ट होगा, रिश्वत लेगा तो? एक अच्छा नागरिक बनकर यदि वो एक चपरासी का काम ही कर रहा है, तो वह अपने पेशे से ईमानदार है। वह उस कलेक्टर से काफ़ी अच्छा है। खेल में एक स्वस्थ प्रतिस्पर्धा होनी चाहिए। एक ईमानदार खिलाड़ी वह है जो कहीं फ़ाउल हो गया है, या ग़लती से कहीं हाथ छू गया तो स्वयं ही बता दे। ये ईमानदारी और आपसी सहयोग की भावना, अपने साथी की सफलता से ईर्ष्या नहीं करना, आदि मूल्य हम खेलों के माध्यम से बहुत अच्छे-से सिखा सकते हैं।

मोहम्मद उमर : इस पूरी प्रक्रिया में स्कूल अथवा समाज में कौन-से तीन प्रमुख बदलाव आपको नज़र आते हैं?

मनोज हाडा : मैं सोचता हूँ कि खेलों के माध्यम से हम बच्चों के भीतर एक अच्छा नागरिक तैयार कर सकते हैं। सिर्फ़ मेडल को नज़रिए में रखकर हमें खेलों का माहौल नहीं बनाना है। बच्चा आगे किसी भी क्षेत्र में गया, यदि वहाँ अपना 100 प्रतिशत देगा तो वह बहुत अच्छा रहेगा। किसी अच्छे पद पर जाने के बाद भ्रष्ट हो जाए तो उसके कोई मायने नहीं। खेलों के माध्यम हम बच्चे से और उसके परिवार से पूरी तरह से भावनात्मक, सामाजिक व हर तरह के सम्बन्ध बना सकते हैं। अगर उसकी कुछ समस्याएँ हैं, तो वह हमसे साझा करेगा न कि सिर्फ़ 10 से 4 बजे के बीच का सम्बन्ध रखेगा।

मोहम्मद उमर : मैं ये सवाल इस सन्दर्भ में कह रहा था कि जब आप 2014 में लवाणा गाँव में नियुक्त हुए, तब से बहुत सारे बदलाव की आपने बात की है। आज स्थिति क्या है?

मनोज हाडा : मैं यह कहूँगा कि बच्चों के आत्मविश्वास में काफ़ी सकारात्मक परिवर्तन हुआ है। पहले वे एक क़िस्म की हीन भावना महसूस करते थे कि हम सरकारी स्कूल में पढ़ रहे हैं, शुरू में बड़े स्कूल के बच्चों के साथ खेलते हुए संकोच करते थे, अपने स्तर को भी नहीं पहचानते थे। लेकिन अब वे देखने लगे हैं कि हम पढ़ाई में भी अच्छे हैं और खेलों में भी अच्छे हैं। आज देश और समाज में जो भी घटना घट रही है, उन सबसे भी परिचित हैं। आज इस गाँव के बच्चे उच्च शिक्षा में जा रहे हैं, विज्ञान एवं गणित भी ले रहे हैं और बाहर पढ़ने भी जा रहे हैं। उनके नज़रिए में भी सकारात्मकता आई है। अपनी ज़रूरतें पूरी करने के साथ-साथ लोगों और समाज को कुछ दे सकने का इरादा है।

मोहम्मद उमर : आपने मुझे बताया था कि एक छात्र जो इसी स्कूल से पढ़ाई करके निकला है, उसने कोर्ट को बनाने में बहुत मेहनत की है। इसी तरह जब एक भील बालिका का नाम अख़बारों में छपा और जब उसकी माँ को लोगों ने बताया तो वह रोने-सी लगी कि मेरी बेटी का नाम अख़बारों में छपा है और वह खेलों में इतना अच्छा कर रही है।

मनोज हाडा : हाँ, बच्चे अपनी तरफ़ से जो योगदान कर सकते हैं, करते हैं। समुदाय के लोगों ने भी बहुत सहयोग किया है। जब कोई बच्चे आगे बढ़ते हैं तो सबसे ज़्यादा ख़ुशी माँ-बाप को होती है। एक अच्छे कारण से बच्चे का नाम अख़बार में आया तो ख़ुश होते हैं और एक दूसरे को देखकर बढ़ावा भी देते हैं। सहयोग और सुझाव देते हैं कि ऐसे और आयोजन होना चाहिए ताकि हमारे गाँव के बच्चे और आगे बढ़ें।

मोहम्मद उमर : जो बच्चे यहाँ से उत्तीर्ण होकर निकलते हैं वो भी आप शिक्षकों से सलाह मशविरा करते होंगे कि हम क्या दिशा चुनें या किस तरह के काम करें?

मनोज हाडा : निश्चित रूप से, यहाँ से पास होकर निकलने के बाद भी बच्चे हमसे सम्पर्क बनाकर रखते हैं। हम ऐसा नहीं मानते कि बच्चों के आठवीं से निकलने के बाद हमारा काम ख़त्म हो गया। हम उन्हें राय देते हैं, उनका मार्गदर्शन भी करते हैं। यानी अगर पढ़ाई में अच्छे अंक आए हैं तो आगे विज्ञान, गणित में जा सकते हो। हम बच्चों के लिए वर्कशॉप भी करवाते हैं। अभी हाल ही में पॉलिटेक्निक कॉलेज के प्रिंसिपल को बुलाया गया। जो बच्चे इस क्षेत्र में रुचि रखते हैं, उनका वहाँ दाख़िला भी करवाएँगे। जो सुविधाएँ हैं, छात्रवृत्ति आदि, वो भी दिलवाएँगे। दसवीं और बारहवीं के बच्चों को बोर्ड की परीक्षा से पहले तैयारी करने और परीक्षा के लिए ख़ुद को तैयार करने में मदद करते हैं कि किस तरह से परीक्षा में लिखोगे, किस तरह से मार्किंग होती है, किस तरह से प्रश्न-उत्तर करने चाहिए, आदि। बच्चों को मार्गदर्शन देना भी ज़रूरी होता है।

मोहम्मद उमर : क्या आप यह मानते हैं कि सरकार की तरफ़ से शिक्षा का जो बजट है, ख़ासतौर पर खेलों के लिए, पर्याप्त नहीं है। ये और बेहतर होना चाहिए। अभी सरकार के पास जितनी व्यवस्थाएँ हैं इन व्यवस्थाओं में कुछ बेहतर हो सकता है? क्या शिक्षा विभाग की या अन्य सरकारी योजनाओं के बारे में आप कुछ बताना चाहेंगे जिनका आप लाभ ले पाए? अगर आप चाहते हैं कि ऐसे ही कुछ प्रयास दूसरे स्कूल शुरू करें तो उनके लिए आपके क्या सुझाव होंगे? उनको कहाँ से शुरू करना चाहिए और कैसे आगे बढ़ना चाहिए?

मनोज हाडा : बजट की न तो सरकार के पास कोई कमी है, न शिक्षा विभाग के पास। कमी है तो सही दृष्टिकोण की। सरकारी स्कूलों को उनके हाल पर छोड़ रखा गया है। जो नीति निर्धारक हैं, नीति निर्माता हैं, उनमें खिलाड़ी नहीं हैं। जो लोग हैं उनको मालूम नहीं है कि वास्तविक समस्याएँ क्या हैं? जो नौकरशाह हैं, अपने हिसाब से नीति निर्धारित कर लेते हैं। दूसरा, कि विद्यालय में जो खेल है वो चिह्नित करके सारे स्कूलों को अपने-अपने हिसाब से अर्थात अलग-अलग विद्यालयों को अलग-अलग खेलों के संसाधन देकर प्रशिक्षण दिया जाए। अभी तक खेल नीति भी निर्धारित नहीं है। शारीरिक शिक्षक नियुक्त तो कर दिया, मगर न तो खेल नीति है, न ही उसकी कोई जवाबदेही है। खेल खिलाना है। क्या खिलाना है? किस तरह से खिलाना है? कैसे क्या होगा? इसकी कोई भी रूपरेखा नहीं है। सिर्फ़ मोटेतौर पर काग़ज़ों में कुछ लिखा हुआ है। सरकार को खेलों के लिए विद्यालय स्तर के अलावा ब्लॉक स्तर पर, हर गाँव के स्तर पर एक खेल सेंटर तैयार करना चाहिए। वहाँ पर सारी सुविधाएँ होनी चाहिए। वहाँ इन्डोर हॉल होना चाहिए, खेल मैदान और चारदीवारी होनी चाहिए, जिसमें सिर्फ़ विद्यालय के ही नहीं सारे गाँव के बच्चे खेलें। सरकार को अच्छी नीतियाँ बनानी चाहिए। शारीरिक शिक्षक

ख़ुद अपने स्तर पर भी बहुत कुछ कर सकते हैं। वे स्कूल स्तर पर बदलाव ला सकते हैं। हमें समस्याओं पर नहीं समाधान पर ध्यान देकर आगे बढ़ना चाहिए। हमें जो करना है उसपर मेहनत करनी पड़ेगी, तो ही हम सफल हो पाएँगे। लगन से लगे रहेंगे तो सारी समस्याएँ ख़त्म हो जाएँगी। हाँ, इसमें समय ज़रूर लगता है।

मोहम्मद उमर : और अन्त में खेल प्रेमियों, खेल शिक्षकों, स्कूल जाने वाले बच्चों, शिक्षकों, चाहे वो कोई विषय ही क्यों न पढ़ाते हों, के लिए ऐसी कोई ज़रूरी बात जो आप कहना चाहते हों। स्कूल और स्कूल में खेलों की बेहतरी के लिए कुछ और बात जो आप अभी तक नहीं कह पाए।

मनोज हाडा : पूरे देश में खेल के आधार पर नीति लागू हो। राज्य स्तर, राष्ट्रीय स्तर पर खेलों के साथ पढ़ाई हो। हम कह सकते हैं कि खेल एक पढ़ाई ही है, तो खेलों के माध्यम से बच्चों को कितना पढ़ाया जा सकता है। खेल और शिक्षा को कितना साथ जोड़ा जा सकता है? वो सबकुछ भी पाठ्यक्रम में होना चाहिए। खेलों के माध्यम से बच्चा एक अच्छा नागरिक तो बनेगा ही और अच्छी चीज़ सीखकर अपने जीवन में उपयोग करेगा। पाँच साल, सात साल की उम्र से ही उनकी पहचान कर शुरू करेंगे तो बाद में वह उस खेल में काफ़ी माहिर हो जाएगा। यह काम सिर्फ़ एक साल की तैयारी में नहीं हो सकता हमें पाँच-दस साल की योजनाएँ बनाकर यह सब काम करने पड़ेंगे, ईमानदारी के साथ। सरकार काम करेगी, नौकरशाह काम करेंगे और हमारे लोग काम करेंगे तो परिणाम अवश्य आएँगे।

मोहम्मद उमर : मनोज सर, आपका बहुत-बहुत धन्यवाद। हमने बहुत विस्तार से बातें कीं और आपने अपने विचार और अनुभव हमें बताए। धन्यवाद।

मनोज हाडा राजकीय उच्च प्राथमिक विद्यालय, लावाणा, राजसमन्द (राजस्थान) में शारीरिक शिक्षक के रूप में कार्यरत हैं। वे मुख्यत: फ़ुटबॉल कोच हैं तथा पूर्व में राष्ट्रीय फ़ुटबॉल टीम के खिलाड़ी रहे हैं। वर्तमान में राजस्थान फ़ुटबॉल संघ के सदस्य हैं। वे राजसमन्द ज़िले और राजस्थान में खेल तथा खिलाड़ियों को बढ़ावा देने की मुहिम में लगे हैं।
सम्पर्क : manojsahuhada@gmail.com

मोहम्मद उमर विगत दो दशकों से विज्ञान एवं गणित शिक्षण, लेखन एवं शिक्षक प्रशिक्षण के कार्य से जुड़े हुए हैं। वर्तमान में अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन राजस्थान में गणित विषय के सन्दर्भ सदस्य के रूप में कार्यरत हैं।
सम्पर्क : umar.jckm@gmail.com